पारंपरिक ज्ञान - विज्ञान का सरंक्षण बनाम स्थानीय भाषाओं का सरंक्षण

डॉ.संजीब सिंह नेगी
असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी
रा.स्नातकोत्तर महाविद्यालय डोईवाला देहरादून
मो. नं. 9410926724 Email- sanjeebnegi24@gmail.com

पारंपरिक ज्ञान और विज्ञान भारत के विभिन्न समुदायों की हजारों वर्ष पुरानी वह ज्ञान परंपरा है जिसे कोई विशिष्ट समुदाय अपने पर्यावरण के साथ पारस्परिक अंतर क्रियाओं के माध्यम से अर्जित करता है। इसमें जीवन यापन के तरीकों जैसे कृषि , पशुपालन ,पारंपरिक स्वास्थ्य और पोषण , पारिस्थितिकीय ज्ञान, जलवायु और मौसम विज्ञान आदि के बारे में परंपरागत ज्ञान और तकनीक शामिल है। ऐसा ज्ञान जो जीवन निर्वाह और मानव अस्तित्व के लिए आवश्यक है।

पारंपरिक ज्ञान विज्ञान की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है कि यह मौखिक परंपरा से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होता है। इस दृष्टि से यह लोक संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है क्योंकि यह लोक संस्कृति की विविध विधाओं जैसे लोकगीत, लोक कथा, लोक गाथा और लोक कलाओं के माध्यम से ही अभिव्यक्त भी होता है और अगली पीढ़ियों तक हस्तांतरित भी होता है।

जहां तक परंपरागत ज्ञान और विज्ञान का प्रश्न है लोक संस्कृति उसे व्यक्त करने का माध्यम है। आधुनिक युग में लोक संस्कृति और लोक साहित्य का अध्ययन यूरोप में भी औद्योगिक - महानगरीय व राष्ट्रीय संस्कृति के अस्तित्व में आ जाने के बाद ही प्रारंभ हुआ। सर्वप्रथम लोकवार्ता (Folklore) शब्द का निर्माण और प्रयोग 1846 ईस्वी में विलियम थॉमस द्वारा किया गया था। इससे पहले इस शब्द के लिए लोकप्रिय पुरातत्व सामग्री (Popular Antiquities) या लोकप्रिय साहित्य (Popular Literature) शब्दों का प्रयोग होता था। 1846 ईस्वी में विलियम थॉमस ने 'एथीनियम' नामक पत्रिका में एक पत्र प्रकाशित किया था जिसमें फोकलोर के अंतर्गत रीति, प्रथा, विधि विधान ,अंधविश्वास, लोक गाथा तथा लोकोक्ति आदि को सम्मिलित माना था। उन्होंने इस बात पर भी चिंता व्यक्त की थी कि इस सामग्री में जो विशिष्टता है वह प्रायः समाप्त हो रही है और आज भी इस अनंत सामग्री की रक्षा की जा सकती है।[1]

इसके पश्चात लोक संस्कृति का अध्ययन ज्ञान के एक विशिष्ट अनुशासन के रूप में हुआ ताकि तथाकथित सभ्य अर्थात औद्योगिक - महानगरीय सभ्यता की मुख्यधारा से पृथक पड़े दूरस्थ जन समुदायों की व्यापक परंपराओं को जाना जा सके। इसका उद्देश्य था कि इन समुदायों की व्यापक परंपराओं (लोक संस्कृति और लोक साहित्य) को जानकर ही हम उनकी सामाजिक रूढ़ियों, परंपराओं और सामाजिक - आर्थिक जीवन के प्रारूप और उनकी आवश्यकताओं को जान समझ सकते हैं तथा उनकी लोक संस्कृति के व्यापक विश्लेषण के द्वारा उन्हें राष्ट्रीय विकास की मुख्यधारा में ला सकते हैं। यह अनायास नहीं कि यूरोप में आधुनिक औद्योगिक महानगरीय सभ्यता और नए-नए राष्ट्रों के उदय के साथ ही 19वीं शताब्दी से लोक संस्कृति के अध्ययन की परंपरा का आरंभ हुआ। यूरोप की भांति भारत में भी लोक संस्कृति और लोक साहित्य के अध्ययन का प्रारंभ आधुनिक काल में अंग्रेजों के भारत आगमन के पश्चात की हुआ। 1784 ई. में सर विलियम जोंस द्वारा रॉयल एशियाटिक सोसायटी की स्थापना और उसके तत्वावधान में भारतीय इतिहास, दर्शन तथा संस्कृति के वैज्ञानिक अनुसंधान का प्रारंभ हुआ। इस क्षेत्र के प्रारंभिक कार्यों में कर्नल जेम्स टॉड का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने राजस्थान की लोक गाथाओं व अनुश्रुतियों के आधार पर अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'एनल्स एंड एंटीक्विटीज आफ राजस्थान' का प्रकाशन 1829 में किया था जिसमें राजस्थान के लोगों के खानपान, रीति रिवाज ,रहन-सहन और परंपराओं के विवेचन के साथ-साथ लोक गाथाओं और अनुश्रुतियों के आधार पर राजस्थान का राजनीतिक इतिहास भी प्रस्तुत किया गया था। कहने का तात्पर्य है कि आधुनिक काल में उपेक्षित पड़े जन समुदायों की लोक संस्कृति के अध्ययन के पीछे एक व्यापक ऐतिहासिक सामाजिक पृष्ठभूमि है। जहां लोक साहित्य और लोक संस्कृति के अध्ययन का प्रारंभ 19वीं शताब्दी से प्रारंभ हुआ, वहीं पारंपरिक ज्ञान के अध्ययन और सरंक्षण की आवश्यकता का एहसास बीसवीं सदी के अंत या 21वीं सदी के प्रारंभ में हुआ। इसके पीछे भी प्रभूत सामाजिक - ऐतिहासिक कारण है। 15 वीं 16 वीं शताब्दी में यूरोप में प्रारंभ हुए पुनर्जागरण ने जिस प्रबोधन व वैज्ञानिक चेतना की शुरुआत की थी उसी से आधुनिक पश्चिमी विज्ञान का जन्म हुआ जिसने मध्यकालीन सामंतवादी रूढ़ियों, ईश्वर, धर्म और आस्था पर प्रश्नचिन्ह खड़े कर दिए थे और आधुनिक चिंतन को मनुष्य केंद्रित कर दिया। यह तय हुआ कि मध्ययुगीन मन को धार्मिक और तपस्यापरक मूल्यों से ग्रस्त मान लिया गया मानो प्रकृति के सौंदर्य तथा ऐहिक क्रियाकलापों के प्रति उसमें संवेदनशीलता हो ही नहीं।[2] आधुनिकता को तर्क और विज्ञान से जोड़ा गया। पीटर हैमिल्टन ने स्थापित किया है कि आधुनिकता की सही परिभाषा ज्ञानोदय काल में हुई वैज्ञानिक और वैचारिक क्रांति द्वारा दी जा सकती है। ज्ञान को व्यवस्थित करने का एकमात्र आधार तर्क माना गया और यह तर्क अनुभवजन्य होना चाहिए। ज्ञानोदय और आधुनिकता का मुख्य मुहावरा तर्क है। जब हम यह समझ लेते हैं कि मनुष्य समाज को जानने और समझने का एकमात्र तरीका तर्क है तो विज्ञान कुछ ऐसे सामान्य नियम बना सकता है जो सारी दुनिया और सारे समाजों पर एक समान रूप से लागू हो सकते हैं और इसके द्वारा मानव समाज में उदारता, स्वतंत्रता, समानता और धर्मनिरपेक्षता लाई जा सकती है। आधुनिकता की इस परियोजना ने जिसने आधुनिक विश्व में लगभग एक नए धर्म का स्वरूप ग्रहण कर लिया था। 21वीं सदी आते आते यह आधुनिकता स्वयं ही प्रश्नांकित हो चुकी थी।

उत्तर आधुनिक विचारक जां फ्रैंकोज ल्योतार ने आधुनिकता के ज्ञानोदय सिद्धांत की आलोचना करते हुए कहा कि इसमें कुछ ऐसे गुप्त तत्व हैं, कुछ ऐसी तार्किकता है जो उच्च वर्गों को निम्न वर्गों के शोषण का अवसर देती है। उन्होंने कहा कि ज्ञानोदय की द्वंदात्मकता और तर्क का पतन हो चुका है। तर्क की अति, विज्ञान का बाजार के साथ गठजोड़, सुख और आनंद की अतिभौतिकतावादी व्याख्या, पूरी प्रकृति का मनुष्य के लोभ- लालच के लिए उपभोग आदि आधुनिक तर्काश्रित व्यवस्था के परिणाम हैं। पश्चिमी आधुनिक विज्ञान के एकांगी विकास ने मनुष्य को अपने समय और स्थान से च्युत कर एक उपभोगवादी जानवर में बदल दिया है। जबकि परंपरागत ज्ञान और विज्ञान अपने निश्चित समय और स्थान की उपज है। जहां पश्चिमी आधुनिक विज्ञान परंपरा में मनुष्य प्रकृति का मालिक है, वहीं देशज परम्पराओं में मनुष्य प्रकृति का मालिक न होकर प्रकृति का एक अंश मात्र है इसीलिए परंपरागत ज्ञान विज्ञान में पारिस्थितिकी के सरंक्षण के साथ सतत विकास की अवधारणा निहित है।

पश्चिमी आधुनिक विज्ञान की एकांगी विचारधारा ने आज मनुष्य के समक्ष जलवायु परिवर्तन , वैश्विक तापमान का बढ़ना, पर्यावरण का विनाश, नई नई वैश्विक बीमारियों का बढ़ता प्रकोप ,सामाजिक गैर बराबरी, परमाणु हथियारों की विनाशक होड़, मानव स्वास्थ्य का निरंतर क्षरण और सांस्कृतिक अध:पतन, प्रदूषण जैसी समस्याएं खड़ी कर दी हैं जिन्होंने आज मानव अस्तित्व के साथ साथ पृथ्वी के अस्तित्व पर भी प्रश्नचिन्ह खड़ा कर दिया है। आधुनिक पश्चिमी विज्ञान ने इस पृथ्वी की विपुल जैविक और सामाजिक विविधता को एकल समाज, एकल संस्कृति और व्यक्तिवाद को उसकी चरम पराकाष्ठा तक पहुंचा दिया है। इन्हीं समस्याओं से ग्रस्त होकर बीसवीं सदी के उत्तरार्ध और 21 वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही परंपरागत ज्ञान - विज्ञान की विविधतावादी विपुल धरोहर को जानने समझने के प्रयास प्रारंभ हुए हैं। परंपरागत ज्ञान को देशज विज्ञान, स्थानीय ज्ञान आदि नामों की संज्ञा से अभिहित किया जा रहा है।

वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी ऑर्गेनाइजेशन और संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार परंपरागत ज्ञान और परंपरागत सांस्कृतिक अभिव्यक्ति दोनों ही देशज ज्ञान के प्रकार हैं।[3] इस प्रकार से कहा जा सकता है कि 19वीं शताब्दी में लोक संस्कृति के अध्ययन का प्रारंभ होना और बीसवीं सदी के उत्तरार्ध और 21वीं सदी के प्रारंभ से परंपरागत ज्ञान विज्ञान का अध्ययन प्रारंभ होने के निश्चित सामाजिक ,ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संदर्भ है जिनके आधार पर ही हम परंपरागत ज्ञान के अध्ययन के उद्देश्यों को परिभाषित कर सकते हैं।

विभिन्न जन समुदायों का परंपरागत ज्ञान वह ज्ञान है जो उनकी लोकभाषा, लोक संस्कृति और लोक वास्तुकला आदि से अभिव्यक्त होता रहा है। इसलिए परंपरागत ज्ञान की अभिव्यक्ति का माध्यम स्थानीय भाषाएं हैं और एक का सरंक्षण दूसरे के सरंक्षण से अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है। बिना स्थानीय भाषाओं के सरंक्षण के परंपरागत ज्ञान के सरंक्षण की कल्पना भी नहीं की जा सकती है और आज की दुनिया में स्थानीय भाषाएं बड़ी तेजी के साथ परिदृश्य से विलुप्त होती जा रहीं हैं।

किसी समय पूरी दुनिया में बोली जाने वाली भाषाओं की संख्या लगभग 15000 के आसपास थी जबकि आज एथनोलाग के 24 वें संस्करण के अनुसार 7139 जीवित भाषाएं रिकॉर्ड की गई है जिनमें से 4065 भाषाएं ऐसी हैं जिनमें विकसित लिखित व्यवस्था प्राप्त होती है।[4] 7000 से अधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से 2900 या 41% आज समाप्त होने के खतरे की सीमा में है। यदि भाषाओं के समाप्त होने की यही दर बनी रही तो आने वाले 100 वर्षों में इनमें से 90% भाषाएं पूरी तरह समाप्त हो जाएंगे। एक शोध के अनुसार केवल संयुक्त राज्य अमेरिका में ही पिछले 400 वर्षों में लगभग 200 देसी अमेरिकी भाषाएं समाप्त हुई है। आज की स्थिति में 9 भाषाएं प्रतिवर्ष मर रही हैं और इसी दर से 2080 तक 16 भाषाएं प्रति वर्ष समाप्त हो रही होंगी।[5] यही स्थिति भारतीय उपमहाद्वीप की भाषाओं की भी है।

भारत में पहला भाषा सर्वेक्षण सर जॉर्ज ग्रियर्सन द्वारा 1894 से 1928 तक किया गया था। इसमें 364 भारतीय भाषाओं का विस्तृत सर्वेक्षण हुआ था। इसके 21 खंडों में भारत की 179 भाषाओं और 544 बोलियों का विस्तृत विवरण उपलब्ध है, जबकि भारत में 1961 की जनगणना में 1652 भाषाओं का प्रयोग दर्ज किया गया था और 1971 की जनगणना में 10,000 से कम लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं को सूचीबद्ध न करने का निर्णय लिया गया जिससे भारतीय भाषाओं की संख्या 108 तक सीमित रह गई थी। सर जॉर्ज ग्रियर्सन द्वारा भारत के भाषा सर्वेक्षण के लगभग 100 वर्षों के बाद स्वतंत्र भारत के पहले व्यापक भाषा सर्वेक्षण जो 2010 में पीपुल्स लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया के नाम से प्रोफेसर जी.एन. डेवी के नेतृत्व में शुरू हुआ था. इसमें लगभग 3500 स्वयंसेवक, 2000 के आसपास भाषा विशेषज्ञ, सामाजिक इतिहासकार और स्वयंसेवी संस्थाएं शामिल थी। इस भाषा सर्वेक्षण ने भारत में 780 भाषाओं की पहचान कर 35000 पृष्ठों का सर्वेक्षण 50 खंडों में प्रकाशित किया। भारतीय लोक भाषा सर्वेक्षण ने सभी भारतीय भाषाओं को अपने सर्वेक्षण में शामिल करने की नीति का पालन किया भले ही उपयोगकर्ताओं की संख्या कितनी भी कम क्यों ना हो। उदाहरण के लिए त्रिपुरा में चैमल नामक भाषा केवल 5 लोगों द्वारा बोली जाती है। भारतीय लोक भाषा सर्वेक्षण की इस नीति से भारत में भाषाओं की संख्या लगभग 780 पाई गई है।

भारतवर्ष एक विशाल बहुभाषी, बहु सांस्कृतिक और बहु धार्मिक राष्ट्र है। क्षेत्रफल के विस्तार के साथ साथ इसमें बसे जन समुदायों ने अपनी अपनी भौगोलिक - आर्थिक आवश्यकताओं के अनुरूप अपनी पृथक-पृथक संस्कृतियों का निर्माण किया है। एंथ्रोपॉलजिकल सर्वे ऑफ इंडिया के 1985 से 1995 तक कराए गए पीपल ऑफ इंडिया नाम के विस्तृत सर्वेक्षण में भारतवर्ष में 4635 समुदाय चिन्हित किए गए थे। इस सर्वे की तुलना येल विश्वविद्यालय द्वारा किए गए ह्यूमन रिलेशन एरिया फाइल सर्वे से करें तो हम पाते हैं कि येल वि.वि. के सर्वे में जहां पूरी दुनिया के लगभग 300 समुदायों की संस्कृति का सर्वेक्षण किया गया था, वहीं भारत के पीपल ऑफ इंडिया सर्वेक्षण में येल विश्वविद्यालय के सर्वेक्षण की तुलना में 15 गुना अधिक विविधता पाई गई है।[6] पीपल ऑफ इंडिया के विशाल दस्तावेज के अनुसार भारत वर्ष में 4635 समुदाय हैं जिनमें 57401 अलग -अलग अस्मिताएं खोजी गई हैं। भाषाओं की दृष्टि से 2549 समुदाय भारोपीय परिवार की, 1032 समुदाय द्रविड़ परिवार की, 175 तिब्बती - बर्मी परिवार की और 44 समुदाय ऑस्ट्रोएशियाटिक परिवार की भाषाएं बोलते हैं। जबकि 5 समुदाय भारतीय-ईरानियन, चार समूह अंडमानी , 15 समुदाय अन्य भाषा परिवारों की भाषा बोलते हैं और 25 समुदाय ऐसी भाषाएं बोलते हैं जो किसी भी भाषा परिवार में वर्गीकृत नहीं है। पूरे भारत को 91 पारिस्थितिकीय- सांस्कृतिक क्षेत्रों में बांटा जा सकता है।[7]

इस विपुल परंपरागत ज्ञान व भाषाओं की विविधता पूर्ण धरोहर पर सबसे अधिक संकट 1990- 91 के पश्चात वैश्वीकरण और आर्थिक उदारीकरण की नीतियों से आया है। वैश्वीकरण ने पूरे विश्व को एक वैश्विक गांव में तो जरूर बदल दिया है परंतु उसने ऐसे पर्यावरणीय संकटों को भी जन्म दिया है जो कि मानव जाति के इतिहास में पहली बार एक भयानक आपदा के रूप में सामने आए हैं। भारत में ही दुनिया के सबसे ज्यादा जैव विविधता वाले क्षेत्र हैं। यहां 1,30,000 से ज्यादा वनस्पति और जीव जंतुओं की प्रजातियां हैं। पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के अनुसार इनमें से कम से कम 10% प्रजातियां खतरे की सूची में आ चुकी हैं। अगर ग्लोबल वार्मिंग से 2% भी तापमान बढ़ता है तो भारत की 15% से 40% जंतु व वनस्पति प्रजातियां समाप्त हो जाएंगी। ऐसे ही 2005 में भारत में 1,46,000 टन इलेक्ट्रॉनिक कचरा पैदा हुआ है।8 इस प्रकार वैश्वीकरण ने दुनिया को एकरूप बनाया है, क्योंकि उपभोक्तावादी वस्तुएं दुनिया भर में एकरूपता ला रही हैं. लोग एक जैसा उपभोक्तावादी जीवन जी रहे हैं और एक समान उपभोक्तावादी मूल्यों का पालन कर रहे हैं, जिससे भिन्न-भिन्न समुदायों की सांस्कृतिक, जातीय या सामाजिक पहचान खोती जा रही है और दुनिया की विविधता और बहुलता पर एक बड़ा संकट मंडरा रहा है। यही बात भाषाओं के बारे में भी सत्य है।सेंट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ इंडियन लैंग्वेज मैसूर ने माना है कि वैश्वीकरण के दबाव में कई भाषाएं अपने मौखिक साहित्य और संस्कृति से संबंधित शब्दों को खो रही हैं, विशेषत: खाद्य पदार्थ, पोशाक और आभूषण, अनुष्ठान, वनस्पति, जीव जंतु आदि से संबंधित शब्दों को।9 2004 में प्रकाशित एक अनुमान के अनुसार वर्तमान में बोली जाने वाली लगभग 7000 भाषाओं में से 90 फीसदी भाषाएं

2050 तक लुप्त हो चुकी होंगी।[10] वास्तव में वैश्वीकरण ग्रीक मिथकों में वर्णित प्रोक्रस्टीज के बिस्तर की तरह है। प्रोक्रस्टीज ग्रीक मिथकों के अनुसार एक दैत्य या राक्षस था, जो वहां से गुजरने वालों को रात गुजारने के लिए अपनी गुफा में आमंत्रित करता था। जहां उसके पास एक लोहे की चारपाई थी, अगर आगंतुक उसकी चारपाई से लंबा होता तो वह उसके पांव काट देता था और यदि आगंतुक छोटा होता तो वह उसके शरीर को खींचकर अपनी चारपाई के साइज का बना देता था। वैश्वीकरण भी अपने मादक - मोहक उपभोक्तावादी जाल में दुनिया को फंसा कर प्रोक्रस्टीज के बेड की तरह पूरी दुनिया को एक ही सांचे और ढांचे में बदल देना चाहता है। वह प्रोक्रस्टीज की तरह दुनिया की सामाजिक, सांस्कृतिक, भाषाई और जैव विविधता का अंत कर बहुलता और विविधता को पूंजीवाद की एकरूपता में बदलकर विश्व को बाजार में बदलना चाहता है।

वास्तव में भाषा केवल संप्रेषण का ही माध्यम नहीं है बल्कि भाषा जितना हम समझते हैं उससे कहीं अधिक जटिल संरचना है। किसी भाषा का मर जाना या उसके शब्दों का विलुप्त हो जाना उस पूरी ज्ञान परंपरा का समाप्त हो जाना है, जिस ज्ञान परंपरा को उस भाषा के शब्द व्यक्त करते थे। वास्तव में यह विश्व हमारे लिए भाषिक बिंबो के माध्यम से ही प्रकट होता है। सुप्रसिद्ध दार्शनिक और गणितज्ञ लुडविग विंट्गस्टीन ने कहा है कि 'हमारी भाषा की सीमा ही हमारे विश्व की सीमा है' क्योंकि विश्व का बोध ही हमारी भाषा पर आधारित है। प्रत्येक भाषा अपनी ज्ञान परंपरा के विशिष्ट विश्वबोध को सामने रखती है। प्रत्येक भाषा और उसके शब्द उसकी सामाजिक, भौगोलिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परंपरा से अर्थ ग्रहण करते हैं। उस भाषा के समाप्त होते ही वह सामाजिक, भौगोलिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परंपरा भी समाप्त हो जाती है। 2004 में हिंद महासागर में आई भयानक सुनामी ने लगभग 2,80,000 लोगों की जान ले ली थी किंतु अंडमान में रहने वाली ओंग, सेन्टलीज, जारवा जैसी ग्रेट अंडमानी जनजातियों ने अपने ज्ञान व बोध से आसन्न खतरे की पूर्व पहचान कर ली थी और वह इस महाविनाश से सुरक्षित रह पाए। जबकि हमारा आधुनिक ज्ञान और विज्ञान तमाम तकनीकी विकास के बावजूद इस खतरे को भांपने में असमर्थ रहा। इस घटना को कई पत्र-पत्रिकाओं ने रिपोर्ट किया था। एक अध्ययन के अनुसार अंडमानी जनजातियों में सुनामी से सबसे अधिक प्रभावित निकोबारी जनजाति हुई जिनकी संख्या लगभग 30,000 है। इनमें से 3,515 निकोबारी सुनामी में मारे गए और यह अन्य अंडमानी जनजातियों की अपेक्षा विकसित दुनिया से अधिक घुले मिले हैं और अन्य शिकारी और खाद्य संग्राहक जनजातियों की अपेक्षा उद्यानिकी और कृषि को अपना चुके हैं तथा अधिकतर अपनी आदिम संस्कृति को छोड़कर ईसाई धर्म अपना चुके हैं।[11]

क्या इससे यह साबित नहीं होता कि जो प्रकृति के जितने करीब हैं वह प्रकृति के रहस्यों और संकेतों को तथाकथित सभ्य और विकसित समुदायों से बेहतर समझते हैं। इसी प्रकार अंडमान में ही बोली जाने वाली एक भाषा बो की अंतिम वक्ता बोआ की 2010 में मृत्यु होने से बो भाषा की लगभग 65000 वर्ष पुरानी एक ज्ञान परंपरा हमेशा के लिए हमारी पृथ्वी से समाप्त हो गई। अंडमानी भाषाओं पर शोध करने वाली जेएनयू की प्रोफेसर डॉ.अन्विता अब्बी जिन्होंने पचीस सौ शब्दों का अंडमानी भाषाओं - बो, खोरा, सारे और जेरू का शब्दकोश तैयार किया। यह शब्दकोश न केवल भाषा के बारे में बल्कि उन जनजातियों की पारिस्थितिकीय समझ को समझने में भी सहायता करता है। उदाहरण के लिए एक शब्द है- ऐन। बोआ ने उन्हें बताया कि यह छोटी झाड़ियों के लिए जो कि समुद्र के किनारे उगती हैं, उसके लिए बो भाषा का शब्द है। जब ऐन झाड़ियों की पत्तियों को कूट कर पानी में डालते हैं तो वह मछलियों को बेहोश कर देती है और मछलियां पानी की सतह पर ऊपर आ जाती हैं और उन्हें जनजाति के लोग आसानी से पकड़ लेते थे। बाद के वैज्ञानिक प्रयोगों से यह बात सही साबित हुई कि इस बारे में बोआ की स्मृति बिल्कुल सही थी।[12] कहने का अर्थ यह है कि भाषाओं में ही मनुष्य की स्मृति सुरक्षित है और देशज ज्ञान की विस्तृत और विशाल परंपरा भी। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश और बिहार में पानी के कुओं की तली में जामुन की लकड़ी परंपरागत रूप से डाली जाती है। इस संबंध में परंपरागत ज्ञान यह बताता है कि जामुन की लकड़ी में ऐसे गुण होते हैं कि वह पानी को स्वच्छ और मीठा बनाता है। उत्तराखंड के परंपरागत किसान और पशुपालक जिस लकड़ी के खूंटे से अपने पशुओं को बांधते हैं वह लकड़ी रिखोला के पेड़ की होती है। खूंटे के लिए इसी पेड़ की लकड़ी का प्रयोग क्यों किया जाता है जब यह जानने का प्रयास गांव वालों से किया गया तो बुजुर्गों ने बताया कि रिखोला के पेड़ की लकड़ी जमीन में गाड़ी जाए तो वह वर्षों तक भी सड़ती नहीं है। ऐसे ही पहाड़ों में घराट की भेर्न यानी टरबाइन भी एक ऐसी विशेष पेड़ की लकड़ी से बनाई जाती थी जो निरंतर पानी में रहने के बावजूद सड़ती नहीं है। आज विलुप्त होते जा रहे ऐसे ही परंपरागत ज्ञान और विज्ञान को संरक्षित करने की आवश्यकता है। लेकिन परंपरागत ज्ञान और विज्ञान के संरक्षण और उसके दस्तावेजीकरण के समय हमें परंपरागत ज्ञान - विज्ञान तथा परंपरागत अंधविश्वास और रूढ़ियों के मध्य पहचान के विवेक को बनाए रखना जरूरी है। सार रूप में कहा जा सकता है कि :

1. परंपरागत ज्ञान विज्ञान(Traditional Knowledge System) देशज जन समुदायों की वह ज्ञान परंपरा है जो उनके पारिस्थितिकीय ज्ञान और तकनीक पर आधारित है।
2. आज वैश्वीकरण के कारण यह ज्ञान परंपरा खतरे में है और उसके विलुप्त होने का बड़ा संकट है।
3. यह ज्ञान परंपरा अधिकांशत: स्थानीय भाषाओं में है और मौखिक परंपरा से पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती है।
4. पारंपरिक ज्ञान का बचाव इस विश्व की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विविधता का बचाव है।
5. पारंपरिक ज्ञान का दस्तावेजीकरण और संरक्षण बिना स्थानीय भाषाओं के संरक्षण के अधूरा रहेगा। इसलिए इन दोनों को एक साथ देखना और दोनों के एक साथ संरक्षण और दस्तावेजीकरण के प्रयास आवश्यक है।
6. पारंपरिक ज्ञान का मात्र संरक्षण और दस्तावेजीकरण उसे किसी संग्रहालय में रखने के लिए नहीं होना चाहिए बल्कि जब तक उस लोक समाज और संस्कृति को नहीं बचाया जाता, पारंपरिक ज्ञान को बचाना भी संभव नहीं हो सकता क्योंकि
7. परंपरागत ज्ञान अपने निश्चित ऐतिहासिक समय और भूगोल की उपज है इसलिए उस भूगोल को बचाए रखने के लिए ऐसे संवेदनशील पारिस्थितिकीय - सांस्कृतिक क्षेत्रों (Eco sensitive cultural zone) में अनावश्यक हस्तक्षेप ना हो।
8. ऐसे पारिस्थितिकीय - सांस्कृतिक क्षेत्रों में विकास की योजनाएं वहां रहने वाले जन समुदायों की सांस्कृतिक - सामाजिक परंपराओं के साथ समन्वय करके निर्मित और क्रियान्वित की जाएं।

सन्दर्भ सूची -

1. कृष्णदेव उपाध्याय ,लोक संस्कृति की रूपरेखा पृष्ठ 2 .
2. राबर्ट एस .हायट,यूरोप इन द मिडल एजेज (1957) ,पृष्ठ 5
3. Janke, TerriSantina Maiko (2018) Indigenous Knowledge:Issues For Protection And Management : Discussion Paper ,Page 15
4. http://www.ethnologue.com
5. http://language conservancy.org
6. P.C.Joshi ,Editor Symposium On People Of India,Page 3.
7. P.C.Joshi ,Editor Symposium On People Of India,Page 7.
8. Hindi.indiawaterportal.org
9. The Economic Times 22 July 2014
10. भाषा शोधकर्ता डेविड ग्रेडल का अध्ययन,२२/०३/२०१२ का एन.बी.सी को दिया साक्षात्कार.
11. http://www.survivalineternational.org
12. The Hindu, 05 February 2010.